अध्याय सत्रवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नमः॥

"परिशुद्ध स्थान में रहने वाले (शुद्ध मन में निवास करने वाले), सभी को एकसमान ज्ञान प्रकाश देने वाले, शुद्ध आनंद से लीला दिखाने वाले, दिव्य आत्मतेज होने वाले, असमान्य गुण दिखाकर लीला करने वाले हे अविनाशी ईश्वर, हे सिद्धारूढ़जी, आपके चरणों में माथा रखकर प्रणाम करने वाले लोगों के भवपाश तोड़ने वाले आप जननायक हैं।"

हे करुणाकर सतगुरुनाथजी, जो आप की शरण में नहीं आता उसका जीवन व्यर्थ हो जाएगा यह जानकर आप ऐसे अज्ञानी लोगों को पार लगाने के लिए विविध उपाय करते हैं। आप ने अनेक उत्सवों की निर्मिती की हैं, जब अज्ञानी लोग उत्सव देखने के लिए आते हैं, उस समय आपके दिव्य वस्त्राभूषण तथा अलंकार देखकर दंग रह जाते हैं, तब आप उनका उद्धार करते हैं। आप का स्पर्श तथा दर्शन से अनंत जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं; किसी के हाथों से आप की सेवा होते ही, उसके मन में स्थित, सांसारिक सुखोपभोगों की सारी वासनाएँ लय हो जाती हैं। प्रतिक्षण आप का चिंतन करते ही कामक्रोधादि मनको छोड़ भाग जाते हैं और सतगुरुजी के समीप आते ही लोभ, मोह नष्ट हो जाते हैं। घर छोड़कर मठ जाने के लिए निकल पड़ने पर मदमत्सर पिछे रह जाते हैं। इस प्रकार मनुष्य को नचाते रहने वाले षड्रिपु सतगुरुजी के सामने निष्प्रभ हो जाते हैं। सतगुरुजी के सन्निधान में हर्ष की लहरें उमड़ पड़ती हैं, जिसमें स्नान करने वाले भक्तों को, एक श्रेष्ठ तथा निश्चित आनंद का स्थान प्राप्त होने के कारण, घर लौटना अच्छा नहीं लगता। विषयोपभोगों के बिना भी सुखप्राप्ति होती है यह जान लेने के पश्चात घरगृहस्थी दुखदायी लगती है, उस समय इस गृहस्थ जीवन से किस प्रकार पार हो जाएँ, यही चिंता मन को सताती है। मन ही मन वैराग्य की भावना जागृत होती है, जिससे घरगृहस्थी से मन ऊब जाता है। ऐसा मनुष्य सत्वर सतगुरुजी के शरण में जाता है, तथा सतगुरुजी भी उसे स्वीकार कर आश्रय देते हैं। जिसे सतगुरुजी ने स्वीकारा है, समझ लीजिए की उसका दुख, जिसका अनुभव जन्ममृत्यु के चक्र में फँसे जीवात्माएँ हमेशा करते हैं, उसी क्षण नष्ट हो जाता है। ऐसे सतगुरुनाथजी आप दयालु हैं, जिन्होंने यह

सारा खेल केवल जनोद्धार के लिए ही रचा है; गुणदोष देखे बगैर वे जनोद्धार के कार्य में लीन हैं। महाशिवरात्री के उत्सव का विशेष वैभव देखने के लिए अनेक जन सिद्धाश्रम में पधारने की कथा अब सुनिए।

तालाब के समीप मठ के सामने स्थित आम के पेड़ की छाया में एक चबूतरे पर बैठकर चार मित्र गपशप कर रहे थे। हर एक ने गले में चाँदी का छोटा शिवलिंग धारण किया था तथा माथे पर भस्म की तीन सुघड़ आड़ी रेखाएँ रेखांकित की थी। उनमें से एक ने कहा, "देखा इस सिद्धारूढ़ को, सचमुच ही यह महामूर्ख है। किस कारण यह इतना ठाटबाट करवा रहा है? सच में ऐसा लगता है की यह मंदबुद्धि होगा।" दूसरे ने कहा, "इसने गले में शिवलिंग धारण न करने के कारण, यह निश्चित ही लिंगायत नहीं है। ऐसे मनुष्य को ये सारे मूर्ख लोग बड़े प्रेम से प्रणाम करते हैं; ये लोग भी विवेकशून्य हैं। शास्त्रों में स्पष्ट रूप से लिखा गया है की हमारे जैसे जंगम, लोगों के लिए गुरुसमान तथा पूज्य हैं, परंतु जंगमों को भी इसके चरण छूकर भ्रष्ट होते देखकर मन को अति कष्ट हो रहे हैं।" उसपर तीसरे ने कहा, "परसो की ही बात है, चार दुष्टों ने इसकी बहुत पिटाई की। परंतु, इसने उन्हें कुछ भी नहीं कहा। इस मनुष्य को जरा भी लाजशर्म नहीं है, बड़े ठाटबाट के साथ ये रथ पर आरूढ़ हो जाता है। भाईयों, अब आप ही बताईए, इसे निर्लज कहे या नहीं?" चौथे ने कहा, "यह बात चार महीनों से भी पुरानी है। एक रात को चिद्घनानंदजी के समाधि के पास जाकर मैंने मजाक किया। उस समय सिद्ध चबूतरे पर बैठा था। मैं पीछे से धीरे से वहाँ गया और दोनों हाथों से उसे पकड़कर सिर के बल जमीन पर पटक दिया। मरे हुए मेंढ़क की तरह यह जमीन पर निश्चेष्ट पड़ा था। इस भवी के लिए यह शासन उचित ही है, न?" ऐसा कहकर वह ठहाके मारकर हँसा। उसपर पहिले ने कहा, "निश्चित ही तुम ने यह बहुत अनुचित कार्य किया। अरे, शारीरिक तौर पर चोट पहुँचाये बगैर उसे बोधित करके तुम्हें उसे उचित मार्ग दिखाना चाहिए था। इसी दुष्कर्म के कारण तुम्हारे पत्नी की मृत्यु हुई और अब तुम एक पिशाच की भाँति भटकते हुए सभी की निंदा के पात्र हो गये हो।" चौथे ने कहा, "मरने वाले अपनी मौत से मरे, भला उसमें इस पगले की शक्ति कहाँ से आई? कुछ भी हो, मुझे इसी बात का आनंद है की उसे शासन हो गया है।"

दूसरे ने कहा, "चलिए, अब चलते हैं। अब उसके सिर पर मुकुट चढ़ाकर उसकी पूजा करेंगे| हम वह दृश्य जाकर देख लेते हैं।" उसके पश्चात वे मठ की ओर निकल पड़े। मार्ग में उनकी हिरेमठ (मठ का नाम) के मुख्याधिकारी से भेंटवार्ता हुई। मुख्याधिकारी के साथ अन्य लोग भी थे। उनमें से एक ने पहिले जंगम से पूछा, "रुद्रय्या, तुम्हारे गले का शिवलिंग कहा गया?" पहिले ने कहा, "इधर ही है," कहते हुए वह अपनी छाती टटोलकर देखने लगा, परंतु शिवलिंग रखा हुआ सिंघोरा (जो धागे में बाँधकर गले में पहना जाता है) ही वहाँ नहीं था| सिंघोरे के गायब होने से, वह दंग रह गया। उसके साथ जो और तीन जंगम थे, टटोलकर देखने के पश्चात जब उनके भी शिवलिंग गायब हुए देखकर, वे भी भौंचक्के रह गये। तत्काल वह उसी मार्ग से लौट पड़े, मार्ग में उन्होंने हर जगह शिवलिंग ढूँढे, फिर भी उन्हे शिवलिंग नहीं मिले, इसलिए दुखी होकर वह लौट पड़े। उन्हें देखकर मुख्याधिकारी ने कहा, "आप लोगों ने इष्टलिंग खो दिये हैं, इसलिए अब आप को प्राण देने होंगे।" उनकी बात सुनते ही उनके पैर तले जमीन खिसक गई। रुद्रय्या ने कहा, "अजी, अभी अभी हम ने अपने गले में शिवलिंग देखे थे, परंतु अब वे दिखाई नहीं पड़ रहे हैं।" मुख्याधिकारी ने कहा, "मैं बताता हूँ की ये सब कैसे हुआ होगा। किसी सच्चे साधु की निंदा करने से ऐसी दु:स्थिति प्राप्त होती है।" उसपर रुद्रय्या ने कहा, "आप ने जो कहा, वह शतप्रतिशत सही है। हमारे हाथों एक घोर अपराध हुआ है, परंतु अब उसके बारे में बात करने से क्या लाभ होगा?" मुख्याधिकारी ने कहा, "कुछ बातें छुपाने से भी कोई लाभ नहीं होता, इसलिए, अब बताओ की क्या हुआ। ताकि, उसपर प्रायश्चित के रूप में कुछ उपाय किया जा सकता है। क्योंकि, साधु की निंदा करना यह एक घोर पाप है"। तब रुद्रय्या ने उन चारो जनों में जो वार्तालाप हुआ था वह सविस्तार बयान किया। उसके तीन मित्र चुप ही थे। सभी को मन ही मन पछतावा हो रहा था। मुख्याधिकारी ने कहा, "तुम लोगों ने व्यर्थ ही स्वामीजी की निंदा करने के कारण उनके क्रोध से ही ये सब हुआ है, इसलिए अब आप लोग उन्हीं की शरण में जाईए। उनकी क्षमायाचना कीजिए, तभीं आप का भला होगा, अन्यथा आप को अनेक संकटों का सामना करना पड़ेगा, यह अच्छी तरह से ध्यान में रखिए।" यह सुनकर पहले तीन जन मुख्याधिकारी के पीछे पीछे चलने लगे,

परंतु जिसने सिद्धारूढ़जी को शारीरिक आघात पहुँचाया था, क्रोध के कारण वह नहीं गया।

मठ के बाहर एक भव्य मंडप की रचना की गई थी, उसमे एक मनोहर वेदिका तैयार की थी, ये सब देखकर वे सभी आश्चर्य से दंग रह गये। उस वेदिका पर रखे तथा दिव्य तेज से चमकने वाले एक सुंदर सिंहासन पर दयालु सिद्धनाथजी बैठे थे। उनके सिर पर सोने का मुकुट था तथा गले में वैजयंतीमाला पहनायी थी। उन्होंने पीले रंग की रेशम की धोती पहनी थी तथा उनके गले में फूलों की अनेक मालाएँ थी। उनके चेहरे पर एक दिव्य प्रभा झलक रही थी। मानो वे शांतता की एक मूर्तिमान प्रतिमा ही लग रहे थे। उन्हें देखते ही मन शांत हुआ और सुख की लहरें उमड़ आयी। जिस प्रकार सूरज की किरणें चारो ओर दिव्य प्रकाश फैलाती हैं, उसी प्रकार शांति की किरणें भी मन की सभीं वृत्तियों को बुझाकर सुख फैलाती हैं, जिससे मन आनंद से भर जाता है। ऐसी जगह पर दुष्ट प्रवृत्तियों का कोई स्थान नहीं होता, वे मन का अधिष्ठान छोड़कर चली जाती हैं और उनका स्थान पश्चात्ताप लेता है, जो मन को साफ कर देता है। तीनों ने वह दृश्य देखा; पलकें झपकाएँ बिना टकटकी लगाकर दिव्य तेज से सुशोभित सिद्धनाथजी को देखते ही उनकी वृत्ति स्थिर हो गई। जिस प्रकार चारो ओर अंधेरा छाया हुआ रहते समय अचानक बिजली की चमक से सारी सृष्टि पलभर में निखर उठती है, बिलकुल उसी प्रकार उनके मन में परिवर्तन हुआ। अज्ञान के अंधेरे से छाये हुए उनके मन में गुरुकृपा की ज्योति जल उठी। उससे अज्ञान के अंधेरे का विनाश होकर वहाँ स्वरूपानंद (जिसे आत्मानंद या ब्रह्मानंद भी कहते है) प्रकट हुआ। सिद्धनाथजी के दर्शन होते ही उनके मन के मद, मत्सर जैसे दुर्गुण नष्ट होकर वे सतगुरु चरणों पर इस प्रकार तल्लीन हो गये की पूर्व स्थिति पर लौट ही नहीं रहे थे। पछतावे से मन भर आये और उन्हें लगा की न जाने कब सिद्धचरणों पर माथा टेकने का अवसर प्राप्त होगा, इतने में मुख्याधिकारी उन तीनों को अपने साथ लेकर गुरुजी के पास गये। सिद्धजी ने मुख्याधिकारी से बैठने के लिए कहा तब वे बैठ गये। उसपर वे तीनों जंगमों ने सिद्धजी के चरणों पर माथा टेका। मुख्याधिकारी ने कहा, "हे सिद्धनाथजी, ये तीनों आप की शरण में आये हैं, इसलिए आप इन्हें

क्षमा कर दीजिए," ऐसा कहते हुए उन्होंने गुरुजी को पूरी घटना विस्तारपूर्वक बयान की। सिद्धनाथजी ने मुख्याधिकारी से कहा, "जब इन्होंने आप के सामने अपना अपराध स्वीकार किया, उसी क्षण मैंने इन्हें क्षमा कर दी थी। अब ये मन से शुद्ध हो गये हैं।" ऐसा कहते हुए महाराजजी ने अपने पिछे से धागों के साथ चार सिंघोरे निकाले, उन्हें देखते ही वे तीनों भौंचक्के रह गये। सिद्धजी ने कहा, "देख लीजिए की ये सिंघोरे आप ही के हैं न! एक बालक को मार्ग में मिले थे, उसने उन्हें उठाकर यहाँ लाकर दिए। सिद्धजी को प्रणाम करके उन तीनों ने अपने अपने सिंघोरे ढूंढ़ निकाले और गले में पहन लिए। चौथा सिंघोरा रह गया था, उसे देखकर मुख्याधिकारी ने कहा, "मैं तुरंत जाकर उस चौथे मनुष्य को ले आता हूँ।" जिसने सिद्धनाथजी को उठाकर जमीन पर पटक दिया था, उसे सिद्धनाथजी से क्षमायाचना करना लज्जाकर लगने के कारण वह पिछे ही रह गया था। जब सभी लोगों ने कड़े शब्दों में बात करते हुए चौथे को ही इस घटना में दोषी ठहराया, तब वह अति क्रोधित हुआ और उसने क्रोध में आकर उनमें से एक को पीटा। तत्काल सभी लोग वहाँ इकट्ठा होकर उसे पकड़कर पीटने लगे, आसपास के लोग भी वहाँ पहुँचकर उसे पीटने लगे। लोगों ने उसे जमीन पर गिराकर लातों और मुक्कों से पीटा और बच्चों ने उसे पत्थर फेंककर मारा, लगभग वह अधमरा ही हुआ था। इतने में मुख्याधिकारी उसे खोजते हुए अचानक वहाँ आ पहुँचे, उन्होंने लोगों को दूर हटाकर उन से सारा हाल पूछा, घटी हुई घटना सुनते ही उनका मन पिघल गया| उन्होंने चौथे का हाथ पकड़कर उसे उठाया| उसका सारा अहंकार नष्ट होकर उसे घोर पछतावा हुआ था; उसकी आँखो से झरझर आँसू बहने लगे। उसने मुख्याधिकारी को प्रणाम करके कहा, "मैंने अनगिनत अपराध किये हैं। अब मुझे गुरु सिद्धारूढ़जी के पास ले चलिए। वहाँ जाकर मैं उनके चरणों पर सिर रखकर, मेरे अपराधों के लिए मुझे क्षमा करके पार लगाने की उस दयासागर से बिनती करुँगा।" उसे पूरी तरह से पछतावा हुआ देखकर मुख्याधिकारी ने मन ही मन कहा की इसका अहंकार पूर्णत: नष्ट हुआ है, अब इसे कृपालु सिद्धनाथजी के पास ले जाने में कोई हर्ज नहीं। दो लोगों ने मिलकर उसे सिंहासन पर बैठे सिद्धानाथजी के चरणों पर विनम्रतापूर्वक डाल दिया। मुख्याधिकारी ने जब पूरी कहानी उन्हें

बयान की तब वे दयार्द्र हो उठे और उन्होंने चौथे को उठाकर अपने पास बिठाया। सिद्धजी ने मुख्याधिकारी से कहा, "अरे भाई, यह तो मेरी कृपा का पात्र हो गया है। इसका स्वास्थ्य देखकर मैं संतुष्ट हो गया हूँ। जिस प्रकार इस अचेतन शरीर को रोग पीड़ा देते हैं, उसी प्रकार लिंगदेह (यह लिंगदेह, प्राणमयकोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष ऐसे तीन कोषों से बना हुआ होकर, धर्म अधर्म तथा विषयोपभोगों के संस्कार उन पर ही होने के कारण मनुष्य को जन्म-मृत्यु के चक्र से जाना पड़ता है।) को दुख, कष्ट सताते हैं। जिस प्रकार आम जनता रोगीयों पर दया करती हैं, उसी प्रकार साधु दुष्टों को रोगी ही समझते हैं। इसीलिए, उन पर दया दिखाकर उनकी रक्षा करनी पड़ती है। अब इस मनुष्य के मन के सारे रोगों का निवारण होने के कारण वह पूर्णत: स्वस्थ हो गया है।" उसपर चौथे ने सिद्धजी की सराहना करते हुए कहा, "हे दयाघन सिद्धनाथजी, आप के दर्शन से मैं मन ही मन हर्षित हो गया हूँ। मेरे मन में शांति स्थापित हुई है। हे कृपालु गुरुनाथजी, अगर आप मुझ पर दया न करते तो निश्चित ही मैं नरक के मार्ग पर चलता रहता। आप को सताने के बावजूद भी आप ने मुझे पार लगाया। आप के भक्तों में मेरी गिनती होने दीजिए। मैं दीन होकर आप की शरण में आया हूँ, आप ही का सेवक हो गया हूँ, कृपा करके मुझे भवसागर के उस पार ले जाईए।" उसके पश्चात सिद्धनाथजी ने अपने हाथों से उसके शिवलिंग का सिंघोरा उसके गले में डालकर उसे आशिर्वाद दिया, जिससे वह बेहद संतुष्ट हुआ। "अपि चेत्सुदुराचारो भजंते मामनन्यभाक। साधुरेव स संतव्य: सम्यव्यवसितो हि स:॥ (अर्थ) भगवदगीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, 'अगर कोई मनुष्य भले ही कितना भी दुराचारी क्यों न हो, अगर मुझे अनन्य भाव से भजता है, तो उसकी गिनती साधुओं में ही होती है।'" भगवदगीता में लिखे गये ये वचन सिद्धनाथजी ने सच करके दिखाए। ऐसे पवित्र चरणों के क्या कहने, जिन्होंने पत्थर होकर मार्ग पर गिरे हुए शापित अहिल्या का उद्धार किया? श्रोतागण, अब इस कहानी के लक्ष्यार्थ की ओर ध्यान दीजिए। जिन्होंने वेदांत का श्रवण किया है, ऐसे मुमुक्षु जनों को स्वीकरणीय होने वाली गहन अर्थभरी यह कथा है।

मन, बुद्धि, चित्त (अंत:करण) और अहंकार यही वे चार जंगम तथा उनके धर्म, यही उनके गले में सुशोभित होने वाले वे चार शिवलिंग ऐसा समझिए। ये चारो जन प्रतिदिन साक्षी रूप होने वाले चैतन्य रूपी सतगुरुजी की निंदा करते थे। उनमें चौथा जो अहंकार था, वह दुष्टबुद्धि का होने के कारण वही आत्मा को आघात पहुँचाता रहता है। परंतु दयालु होनेवाली आत्मा अहंकार को क्षमा करके उसका उद्धार करने का मौका देखती रहती है। अचानक ऐसा मौका मिलता है। चारो जन आत्मा की निंदा करके उसका तिरस्कार करने लगते हैं, तब आत्मा अपनी माया से उनके धर्म छीन लेती है। तब उनकी वृत्ति मंद (नाकाम) हो जाती है। उस समय विवेक रूपी मुख्याधिकारी से उनकी मुलाकात होती है और वही उनकी भेंटवार्ता अंतरात्मा से कराता है; वही उन्हें स्वधर्म की प्रतीति होती है। स्वधर्म की प्रतीति होने के पश्चात वे आत्मा का तिरस्कार न करते हुए, आत्मा की भक्ति करते हैं तथा उसके विचारों में तल्लीन होकर सारे व्यवहार करते हैं। परंतु, चौथा अहंकार आत्मा का विरोध करता रहता है। स्थूल शरीर के सारे गुण नष्ट होते देखकर उसे खेद होता है। लिंगदेह के अभिमान के कारण उसे अति क्रोध आता है। तब आत्मा से एकरूप हुई वृत्ति रूपी लोग उसकी पिटाई करने के कारण वह लाचार होकर गिर पड़ता है और दृष्टि के परे होने वाली आत्मा को जान लेता है, उसी समय विवेक उसके पास आता है। विवेक को देखते ही उसे पूरी तरह से पछतावा होता है और वह आत्मा के चरणों में लीन होने के लिए उसके दर्शन कराने की विवेक से बिनती करता है। विवेक उसे आत्मा के पास ले जाता है, आत्मा उसपर प्रसन्न होकर अहंकार को अपने समीप बिठाता है, जिससे वह बहुत सुखी होता है। उस समय वह अपने सच्चे धर्म को समझ जाता है, जिससे उसका भ्रम नष्ट होकर उसके श्रमों का परिहार होता है। उसपर वह आत्मा की सराहना करने लगता है। साक्षी होने वाले चैतन्य रूपी सतगुरुजी, अन्य तीनों को बाहर छोड़कर अहंकार पर अधिक कृपा करके ब्रह्म (यानी मोक्षप्राप्ति) के पास ले जाते हैं। सतगुरुजी सगुण रूप में प्रकट हुआ ब्रह्म है। अपने मन में जब हम उन्हें पहचानते (जानते) है, तब वह निर्गुण होते हैं। इस प्रकार, सतगुरुजी सगुण तथा निर्गुण इन दोनों स्थितियों में रहकर कार्य करते हैं। जो उन्हें अनन्य भाव से शरणागत होता है, उसे वे स्वरूप दर्शन

(आत्मज्ञान) कराते हैं; उस निर्विकार स्वरूप का अनुभव करते ही अज्ञान पूर्ण रूप से नष्ट होता है। अज्ञान का पूर्णत: नाश होने से, सांसारिक भय अपनेआप ही नष्ट होता है, जिससे सारी वृत्तियाँ लीन होकर ब्रह्म स्थिर होता है। श्रोतागण, अब अगले अध्याय में बयान की हुई कथा सुनिए, जिससे हृदयग्रंथि (यानी मन में होनेवाली भ्रामक तथा झूटी कल्पनाओं की गाँठे) खुलकर आनंद प्राप्त होगा। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह सत्रहवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥